Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

पूर्वी राजस्थान में जल संचय के परम्परागत स्त्रोंत (बावड़ियों के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. मुकेश कुमार शर्मा
सहा. आचार्य, इतिहास विभाग
एस.एस.जी.पारीक,पी.जी.महिला महाविद्यालय
चौमूं जयपुर

सारांश :– पूर्वी राजस्थान सम्पूर्ण प्रदेश के महत्वपूर्व भू–भाग के रूप में ज्ञात होता हैं। श यह क्षेत्र अपने गौरवशाली और समृद्धशाली सांस्कृतिक अतीत के लिए विख्यात रहा हैं। यह क्षेत्र वीर और वीरांगनाओं की भूमि हैं। यहाँ समय–समय पर अनेक वंशों के योग्य व पराक्रमी शासक अवतीर्ण हुये जिन्होनें स्थापत्य (मुख्यतः बावड़ियों, तालाबों, कुण्डों) के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया। जल संरक्षण की दिशा में रियासतकालीन शासकों ने बढ़–चढ़ कर रूचि ली । इन शासकों ने पानी के बहाव क्षेत्रों को नियंत्रित कर उसका संरक्षण हो एवं राज्य की जनता को सदियों तक पानी उपलब्ध रहे, इसके लिए समय–समय पर विशाल व अनुपम बावड़ियों, तालाबों, कुण्डों का निर्माण कराकर वर्षों पूर्व उस समय में जल संचय (संरक्षण) का संदेश दिया जो वर्तमान समय में महत्ती आवश्यकता के रूप में प्रासंगिक हैं। इन बावड़ियों का निर्माण यहाँ के शासकों ने परोपकार व जनकल्याण की भावना से अभिभूत होकर करवाया। वर्तमान समय में न केवल राजस्थान अपितु वैश्विक जल संकट की विकट स्थिति में इन बावड़ियों रूपी सांस्कृतिक धरोहरो का महत्त्व स्वतः स्पष्ट हो जाता हैं।

मुख्य शब्द :– शिलालेख, जल संचय, परम्परागत, अभिलेख, स्मारक, लोकोपकारी, जन कल्याण, बावड़ी, नाड़ी, टांका, जोहड़ (टोबा), खड़ीन, कुआँ, संरक्षण, पेयजल, रियासत कालीन।

प्रस्तावना :– पूर्वी राजस्थान के अनेक वंशों के योग्य, पराक्रमी और दूरदर्शी शासकों ने परम्परागत जल संचय के स्त्रोंतों (बावड़ियों, तालाबों) के निर्माण परम्परा में अभूतपूर्व व महत्त्वपूर्ण रूचि दिखाई हैं। यहाँ के शासकों नें विशिष्ट अवसरो जैसे युद्ध में विजयी होने, पुत्रियों के विवाह पुत्र जन्म होने , अपने वंश की कीर्ति पताकाओं को अमर व अक्षुण्ण बनाने और जन सेवार्थ व परोपकार हेतु इन जल संचय के ऐतिहासिक व सांस्कृतिक धरोहर के रूप में बावड़ियों का निर्माण करवाया। यहाँ से हमें कुछ शिलालेख भी प्राप्त होते हैं। जो कि इतिहास निर्माण की प्रमाणिक और विश्वसनीय सामग्री के रूप में ज्ञात हैं। साथ ही पूर्वी राजस्थान के इतिहास निर्माण में एक नवीन अर्न्तदृष्टि प्रदान करते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य :–

1. मौलिक तथ्यों और प्रमाणिक शोध सामग्री के आधार पर पूर्वी राजस्थान के परम्परागत जल संचय के स्त्रोंतों का अध्ययन करना।
2. अभिलेखो में उल्लिखित बावड़ियों की निर्माण संरचना , कला व स्थापत्य का अध्ययन करने के साथ–साथ वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इनके महत्त्व को प्रासंगिक बनाना।
3. बावड़ियों के निर्माण सम्बन्धी धार्मिक–सांस्कृतिक मान्यताओं, वर्तमान समय में वैश्विक जल संकट की विकट स्थिति को ध्यान में रखते हुए जल संरक्षण हेतु आवश्यक प्रयास व स्थानीय और प्रशासन के साथ–साथ इन ऐतिहासिक सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण में जन सहभागिता सुनिश्चित करना।
4. नवीन अनुसंधान पर आधारित ऐतिहासिक एवं पुरा महत्त्व के इन स्त्रोतों (बावड़ियों) से इतिहास निर्माण में नवीन अर्न्तदृष्टि प्रदान करना।

साहित्यालोकन :– पूर्वी राजस्थान के परम्परागत जल स्त्रोतों (बावड़ियों के विशेष सन्दर्भ) में सम्बन्धित प्रमाणिक व विश्वसनीय ग्रंथ व लेख प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर व जयपुर शाखा और राजस्थान सुजस, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, जयपुर में उपलब्ध मूल स्त्रोतों, प्रकाशित एवं अप्रकाशित शोध सामग्री तथा शोध यात्रा के दौरान स्वयं के द्वारा अवलोकन कर संकलित किये गये अभिलेखीय साक्ष्यों का तथ्यपूर्वक अध्ययन कर उपयोग किया गया हैं। शोध प्रबन्ध में निम्न उपलब्ध साहित्य का भी अवलोकन एंव विश्लेषण किया गया हैं–

- **डॉ. कुसुम सोलंकी** की कृति **भारतीय बावड़ियाँ** जो हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली से 2013 में प्रकाशित हुई हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में भारत की बावड़ियों से सम्बन्धित आवश्यक व महत्त्वपूर्ण तथ्यों का समावेश (जैसे बावड़ी निर्माण परम्परा, तकनीक) किया गया हैं।
- **डॉ. अनुकृति उज्जैनिया** की पुस्तक **हाड़ौती की जल संस्कृति** जो राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर से 2015 में प्रकाशित हुई हैं। जिसमें 12 वीं शताब्दी से लेकर 19 वी. शताब्दी तक की बावड़ी निर्माण कला परम्परा का वर्णन मिलता हैं तथा तत्कालीन शासकों के धार्मिक–सांस्कृतिक इतिहास की उपलब्धियों पर भी प्रकाश डाला हैं।
- **डॉ. राघवेन्द्र सिंह मनोहर** की पुस्तक ज**यपुर क्षेत्र के ऐतिहासिक स्मारक एवं शिलालेख** जो कि ताराप्रकाशन, जयपुर से 1994 में प्रकाशित है और **राजस्थान के राजघरानों का सांस्कृतिक अध्ययन** पंचशील प्रकाशन जयपुर से 1986 में प्रकाशित हैं जिसमें पूर्वी राजस्थान के ऐतिहासिक स्मारकों व शिलालेखों में बावड़ियो के महत्त्व, संरक्षण आदि से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सामग्री को सम्मलित किया हैं। तथा तत्कालीन राजवंशों के शासकों के समय की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जन–जीवन की झाँकी भी प्रस्तुत की हैं। जनकल्याण की भावना से प्रभावित होकर तत्कालीन शासक इन बावड़ियों का निर्माण करवाते थे।
- **प्रो.श्यामा प्रसाद व्यास** की पुस्तक **राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन** जो राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर से 1986 में प्रकाशित हैं। इस पुस्तक में बावड़ियों व तत्कालीन समय के राजघरानों के इतिहास के साथ ही धार्मिक–सांस्कृतिक जन जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्यों को समेटा गया हैं।

इस प्रकार 12 वी से 19 वीं शताब्दी तक के रियासतकालीन पूर्वी राजस्थान के शासकों की जल संचय (संरक्षण) हेतु बनवाई गई बावड़ियों और सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन का तथ्यपरक अध्ययन किया गया हैं।

वर्तमान में पूर्वी राजस्थान में मुख्यतः जयपुर, टोंक, दौसा, करौली, भरतपुर, धौलपुर, अलवर, सीकर जिले का पूर्वी भाग, झुन्झुनू जिले का दक्षिणी–पूर्वी भाग, बून्दी जिले का उत्तरी–पूर्वी भाग सम्मिलित हैं।[1] इस क्षेत्र में शौर्य और बलिदानों की गौरव गाथाओं के साथ–साथ जल संचय के परम्परागत स्त्रोतों कुएँ, बावड़ी, तालाब, नहर इत्यादि की उपयोगिता एवं महत्त्व का बखान भी किया गया हैं।[2] पूर्वी राजस्थान में विशेषतया 12 वीं से 18 वींष्ताब्दी के मध्य में यहाँ के शासकों, सामन्तों, सेठ–साहूकारों, राजघरानों से जुड़ी महिलाओं रानियों, खवासनों, धायों और पासवानों ने भी जल संचय के इन परम्परागत स्त्रोतों का निर्माण करवाकर इस धार्मिक सांस्कृतिक परम्परा का निर्वाह किया हैं।[3]

वैदिक काल से लेकर आज तक जल के महत्त्व को शास्त्रों और काव्यों में प्रदर्शित किया गया है। कहा जाता है कि जब ब्रह्म ने सृष्टि की रचना करनी चाही तो उसने सर्वप्रथम जल में सृष्टि का बीजवपन किया ।[4]

प्राचीन साहित्य तथा लेखों में जलाशयों के लिए वापी और तटाक शब्द ज्ञात होते हैं वापी का अर्थ छोटे जलकुण्ड से है जबकि तटाक बड़े जलाशय का परिचायक हैं। वास्तुशास्त्र के प्रमुख ग्रंथ अपराजित पृच्छा के अध्याय 74 में बावड़ियों के नन्दा, भद्रा, जया और सर्वतोमुख चार प्रकार बताये गये हैं।[5]

राजस्थान में प्राचीन समय के अभिलेखों , शिलालेखों व प्रशस्तियों में भी जल स्त्रोतों, बावड़ियों, नहरों, कुओं, तालाबों का उल्लेख मिलता हैं। इन जल स्त्रोतों से सम्बन्धित शिलालेख तालाबों, बावड़ियों के बीच दीवार में चुनी (लगी हुई) शिलाओं पर ज्यादातर देखने को मिलते हैं। इनकी भाषा संस्कृत, राजस्थानी, हिन्दी, फारसी तथा उर्दू में समयानुकूल प्रयुक्त होती हैं। इनमें गद्य व पद्य दोनों सम्मिलित होते हैं।[6]

ग्रीष्मकाल में प्यास से व्याकुल गायों, पशु–पक्षियों तथा मनुष्यों की तृषा–निवारणार्थ जलाशय खुदवाने वाले को अश्वमेध और वाजपेय यज्ञ के फल की प्राप्ति बताई गई हैं–

तटाके यस्य गावस्तु पिबन्ति तृषिता जलम्।
मृग पक्षि मनुष्याश्च सो अश्वमेधफलं लभेत्।।[7]

तथा–

निदाधकाले सलिलं तटाके यस्य तिष्ठति।
वाजपेयफलं तस्य वे ऋषयोअबुवन।।[8]

फलतः हमारें यहाँ सार्वजनिक उपयोग हेतु बावड़ी, तालाब, कुएँ आदि खुदवाने की परम्परा प्राचीनकाल से ही चली आ रही हैं एवं राजस्थान का शायद ही कोई अंचल ऐसा हो, जहाँ लोकोपकारी भावना से प्रेरित हो किसी न किसी जलाशय का निर्माण न करवाया गया हो। केवल क्षत्रिय नरेशों या शासकों ने ही नहीं, समाज के अन्य वर्गो के सम्पन्न एवं उदार व्यक्तियों ने भी समय–समय पर अनेक बावड़ियों, तालाबो तथा कूप–वापियों का निर्माण करवाकर इस दिशा में प्रशंसनीय भूमिका निभाई हैं।[9] इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण है कि इन राजाओं और सामन्तों की रानियाँ व राजकुमारियाँ भी जलाशयों (विशेषतः बावड़ियों) के निर्माण में उनसे पीछे नही रही हैं। राजस्थान की प्रायः हर भूतपूर्व रियासत बल्कि ठिकानों में भी ऐसे अनगिनत बावड़ियाँ, कुएँ व तालाब हैं, जिनका निर्माण इन धर्म परायण रानियों व राजकुमारियों की परोपकारवादिता के गुणों के फलस्वरूप हुआ हैं तथा जो आज भी उनके नाम से जाने जाकर उनकी कीर्ति को अक्षुण्ण किये हैं।[10]

कहने का अर्थ हैं कि मध्ययुग में बावड़ियाँ, तालाब, कुएँ खुदवाने के पीछे लोकोपकार द्वारा पुण्य की भावना ही प्रमुख रहती थी। कूप, वापी एवं सरोवरादि के निर्माण को एक महान् पुण्य कार्य समझा जाता हैं। दूसरे शब्दों में यह उस युग का एक मान्य धार्मिक आदर्श था, प्रचलित सांस्कृतिक परम्परा थी।[11]

जल संचय के इन परम्परागत स्त्रोतों का निर्माण जल के महत्त्व और उपयोगिता को सिद्ध करते हैं । जल मनुष्य के जीवन का आधार हैं। जल प्रकृति का अलभ्य, अनुपम, अद्वितीय और एक ऐसी संजीवनी सम्पदा हैं जिसके हर कण में प्राणदायिनी शक्ति हैं । जहाँ जल है, वहाँ जीवन है जहाँ जल नही है वहाँ जीवन निष्प्राण हैं। अथर्ववेद के सूक्त 6 के चौथे मंत्र में जल की महत्ता के बारे में कहा गया है कि सूखे प्रान्त रेगिस्तान का जल हमारे लिए कल्याणकारी हो। भूमि से खोदकर निकाला गया बावड़ी या कुएँ आदि का जल हमारे लिए सुखप्रद हो।[12]

राजस्थान में जल संचय की परम्परागत विधियाँ उच्च स्तर की रही हैं। इनके विकास में राज्य की धार्मिक एवं सांस्कृतिक मान्यताओं का प्रमुख योगदान हैं। जल के प्रति धार्मिक दृष्टिकोण के कारण ही प्राकृतिक जल स्त्रोतों को पूजा जाता हैं। अध्ययन क्षेत्र में निम्नलिखित पारम्परिक जल संचय पद्धतियाँ है जो इस प्रकार हैं।

टांका :–वर्षा जल को पीने के उपयोग में लाने के लिए थार मरूस्थल में टांका निर्माण की पुरानी परम्परा रही हैं। इनका निर्माण खेती, घरों, गढ़ो तथा किलों में वर्षो जल के संग्रहण हेतु किया जाता रहा हैं। टांका प्रायः गोल आकार के बनाते हैं परन्तु हवेलियों तथा किलों में चोकोर टाँके भी बनाये गये हैं। खेत में टांका ढलान पर बनाया जाता हैं जिसमें पानी आसानी से टांके में जा सके। घरों के पास ऊँची जगह टांका बनाया जाता था ताकि आस–पास का गंदा पानी उसमें नही जाये। टांके में घरों की छतो से वर्षा का पानी एकत्रित किया जाता हैं। इसमें पानी छनकर जमा होता हैं। छोटे टांके को कुण्डी भी कहा जाता है।[13]

नाड़ी :– नाड़ी एक प्रकार का पोखर (तलाई) होती है जिसमें वर्षा जल संचित होता हैं।[14] इसका जलसंग्रहण क्षेत्र 10 से 100 हेक्टेयर तक होता है तथा इसकी गहराई 3 से 12 मीटर तक होती हैं।[15] नाड़ी बनाते समय बरसाती पानी की मात्रा एवं जल संग्रहण क्षेत्र को ध्यान में रखकर ही जलगृह का चुनाव करते हैं। नाड़ी का निर्माण करने वाले स्थान से उसका जलग्रहण क्षेत्र व जल निकास तय होता हैं इसमें 7–8 माह तक पानी रूका रह सकता हैं।

जोहड़ या टोबा :– नाड़ी के समान आकृति वाला जल संग्रहण केन्द्र टोबा कहलाता हैं। टोबा का जल–संग्रहण क्षेत्र नाड़ी से अधिक गहरा होता हैं। इस प्रकार टोबा भी राजस्थान में एक महत्त्वपूर्ण पारम्परिक जल स्त्रोतें हैं। जिस भूमि पर पानी का रिसाव कम होता हैं टोबा निर्माण हेतु उपयुक्त स्थान माना जाता हैं।[16]

खड़ीन:– खड़ीन जल संरक्षण की पारम्परिक विधियों में बहुउद्देशीय व्यवस्था हैं। यह परम्परागत तकनीकी ज्ञान पर आधारित होती हैं। यह मुख्यतः जैसलमेर जिले का परम्परागत वर्षा जल संग्रहण क्षेत्र हैं । खड़ीन मिट्टी का बना बाँधनुमा अस्थाई तालाब होता हैं।

तालाब :– वर्षाजल को संचित करने में तालाब प्रमुख स्त्रोत रहा हैं। जल का आवक क्षेत्र विशाल हो तथा पानी रोक लेने की जगह भी अधिक मिल जाये तो ऐसी संरचना को तालाब कहते हैं। यह नाड़ी की उपेक्षा और अधिक क्षेत्र में फैला हुआ रहता हैं तथा कम गहराई वाला होता हैं।

बावड़ी :– राजस्थान में कुँओं व सरोवर की तरह ही बावड़ी निर्माण की परम्परा अति प्राचीन हैं।[17] बावड़ी अथवा बाव का तात्पर्य एक विशेष प्रकार के जल स्थापत्य से हैं जिसमें एक गहरा कुँआ अथवा कुण्ड होता है

और पानी खींचकर निकालने के साथ ही पानी की सतह तक जाने के लिए सीढ़िया भी बनी होती हैं। जो कई सतहों और मंजिलों में बटी होती हैं।

इन पर अलंकृत द्वार सुन्दर तोरण तथा देवी–देवताओं की प्रतिमाएँ बनायी जाती हैं। इन बावड़ियों को निर्माण कार्य में ईंटों व पत्थरों का प्रयोग होता है। बावड़ियों के आगे एक आंगननुमा भाग के ठीक नीचे जल भरा हुआ होता हैं। आंगन से प्रथम तल तक सीढ़ियों, स्तम्भों तथा मेहराबों का निर्माण किया हुआ होता हैं। एक से अधिक मंजिलों में निर्मित कुण्डों और बावड़ियों में दरवाजे ,सीढ़ियों की दीवारें तथा आलिये बने होते हैं जिसमें बेलबूंटों , झरोखों, मेहराबों एवं जल देवता कश्यप, भूदेवी, वराह, गंगा, विष्णु और दशावतार का चित्रण किया जाता हैं।[18] बावड़ियों में पानी आने के प्रवेश द्वार भी छोड़े गये हैं ताकि चारो तरफ का बरसाती पानी इधर–उधर व्यर्थ बहने के बजाए इनमें समा सके जो बावड़ियाँ शहरी परकोटे के भीतर राजप्रसादो व किलों के इर्द–गिर्द बनी हुई हैं। जिनका उपयोग उस समय निर्माता परिवार की महिलाओं के स्नान इत्यादि निजी उपयोग के लिए होता था। अधिकतर बावड़ियाँ नगर द्वार के बाहर, सराय या धर्मशालाओं के पास व मन्दिरों के साथ बनाई जाती थी। जिसका लाभ यह था कि इन मार्गो पर जाने वाले व्यापारियों के माध्यम से वाणिज्यिक सूचनाएँ संचारित की जाती थी एवं यात्रीगण वहाँ रूककर स्नान, पूजा, भोजन आदि कर सकते थे। लोग पुण्यार्थ मन्दिर व बावड़ी बनाते थे। इसके अलावा व्यापारियों व आमजन ने भी इन बावड़ियों के निमार्ण में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया । बावड़ी बनाने का लाभ यह था कि लोगों को जितने पानी की आवश्यकता होती थी उतने ही पानी का दोह न किया जाता था तथा लोग पानी को संरक्षित करते हुए विवेकपूर्ण उपयोग करते थे।[19]

अभिलेख मानव जीवन के साक्षात दर्पण है। प्राचीनकाल से आधुनिक समय तक मानव अभिव्यक्ति के साधनों में मुद्रा, ताम्रपत्र, पट्टिकाएँ और स्तम्भ आदि इतिहास का बोध कराते रहे है। पूर्वी राजस्थान क्षेत्र में जल स्त्रोतों (मुख्यतयाः बावड़ियों) पर शिलालेख अंकित किये गये हैं जिनका संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

16 वीं से 19 वीं शताब्दी के मध्य पूर्वी राजस्थान की राजपूत रियासतों के शिलालेखों एवं स्मारकों में बावड़ियो के निर्माण जैसे लोकोपकारी कार्यो के किये जाने का उल्लेख मिलता हैं। समय–समय पर यहाँ ऐसे शासक अवतीर्ण हुये जो प्रजा की सेवा करना ही अपना परम कर्तव्य मानते थे। वे प्रजा को अपनी संतान की भाँति प्रेम करते थे। हमारे अध्ययन क्षेत्र मे अनेक लोक कल्याणकारी कार्यो का निष्पादन हुआ है जिनमें तालाब कुएँ, बावड़ी मुख्य थे। यहाँ के शासकों ने अनेक कुँओ, बावड़ियों और तालाबों का निर्माण करवाया । जिनका उद्देश्य सामान्य जनता के लिए पेयजल व कृषि की सिंचाई हेतु पानी की सुविधा उपलब्ध करवाना था।

अचरोल (जयपुर) स्थित बावड़ी के शिलालेख[20] सवत् 1920 (1863ई.) से विदित होता है कि कछवाहों की बलभद्रोत शाखा के ठाकुर रणजीत सिंह ने अपनी पुत्री ईंद कँवर का विवाह मेड़ता के लक्ष्मण सिंह के साथ सम्पन्न किया तब इस शुभ अवसर पर बावड़ी बनवाकर प्रजा के लिए पेयजल सुविधा उपलब्ध करवाने की जानकारी प्राप्त होती हैं। संवत् 1882 (1825ई.) के घाट की गुणी (जयपुर) स्थित शिलालेख[21] से ज्ञात होता है कि इस कुण्ड (बावड़ी) को महाराजा सवाई जयसिंह तृतीय की एक धाय रंग बरस ने बनवाया था। झर (झिर) जयपुर की बावड़ी का शिलालेख से बाँसखो के कुम्भाणी शासकों के युग में जन–कल्याण को ध्यान में रखते हुए कुएँ, बावड़ी आदि जलाशयों के निर्माण सम्बन्धी तथ्य मिलते है। चौमूँ की 6 मंजिली विशाल व प्राचीन बावड़ी का निर्माण नाथावतों के इतिहास के अनुसार मनोहरदास की चौथी रानी रतनकुँवरि के द्वारा संवत् 1626 में इस बावड़ी का निर्माण प्रारम्भ करने व संवत् 1640 में बनकर तैयार करवाई गई थी।[22] इसी प्रकार 'शहर'(करौली) कस्बे में तालाब किनारे स्थित शिव मंदिर का शिलालेख[23] संवत् 1824 (1767ई.) से तालाब की पाल बनवाने का उल्लेख मिलता हैं। लवाण में तालाब किनारे स्थित शिलालेख[24] से हमें सिंघाड़े की खेती और उससे प्राप्त

हासिल (राजस्व) का तालाब की पाल की मरम्मत के लिए उपयोग किये जाने से सम्बन्धित आवश्यक सूचना प्राप्त होती हैं।

लोकोपकारी कार्यो की इसी श्रंखला में जोबनेर स्थित रूपकुँवरी की बावड़ी के शिलालेख[25] संवत् 1705 (1648ई.) से ज्ञात होता है कि जोबनेर के शासक मनोहर दास की पुत्री रूपकुँवरी द्वारा पुण्यार्थ अथवा जन–सेवार्थ बावड़ी का निर्माण कराये जाने का उल्लेख हैं। खण्डेला स्थित माजी की बावड़ी के शिलालेख[26] 1749 (1692ई.) से जानकारी मिलती है कि इस बावड़ी का निर्माण खण्डेला के राजा बहादुर सिंह की पत्नी ने जनता की पेयजल सुविधा हेतु किया था। गोल्याणा (झुन्झुनू) के शिलालेख[27] से भी एक बावड़ी का उल्लेख मिलता हैं। इसका निर्माण भी जनहित की भावना को ध्यान में रखते हुए किया गया है।

निष्कर्ष :– मानव ने अपने जीवन के प्रादुर्भाव के साथ ही जल का महत्व और उसकी आवश्यकता को समझ लिया था। यही कारण रहा कि उसने अपने रहने का ठिकाना वही बनाया, जहाँ जल उपलब्ध हुआ। सभ्य जीवन में जब मानव प्राकृतिक रूप से बने जलाशय से दूर गांव , कस्बे व नगर बसाकर समूह में रहने लगा तब उसने जल की उपलब्धता भी सुनिश्चित की और उसी के अनुरूप मानव जन्य जलाशयों का निर्माण कर, जल प्रबन्धन के बेहतर तरीके अपनाकर जलाशयों से खेतों की सिंचाई, पीने का पानी और जीवन की अन्य आवश्यकताओं को पूरा किया । आज न केवल राजस्थान अपितु सम्पूर्ण भारतवर्ष और विश्व पर्यावरण असंतुलन के कारण जलवायु और जल दोनों की समस्याएँ अत्यन्त गंभीर रूप धारण करने लगी हैं। आज लगभग आधा विश्व जिसमें भारत भी शामिल है जल की मांग बढ़ने और जल भण्डार कम हो जाने के फलस्वरूप भावी जल संकट की विभीषिका से जूझ रहा हैं। मनुष्य के जीवन में जल का महत्त्व जीवन दान तक ही नही हैं अपितु इतिहास, संस्कृति यहाँ तक की जन जीवन के सामाजिक , आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक पक्ष भी जल से प्रभावित हो रहे हैं। व्यक्ति के जीवन एवं सामाजिक कार्यो में जल अनिवार्य हैं। प्याऊ लगवाकर प्यासे को जल पिलवाना, कुएँ, बावड़ियाँ खुदवाना, पशुओं के लिए खेली बनवाना एवं पक्षियों के लिए पेड़ो पर परिण्डे बँधवाना सदियों से पुण्य कार्य माने जाते रहे हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में न केवल राजस्थान अपने भारत के कई राज्यों में जल संचय व संरक्षण की स्थिति चिन्तनीय हैं। विगत दशकों में गाँवों, कस्बों व शहरों में स्थित जल स्त्रोतों बावड़ियों, कुण्डों व तालाबों को बेरहमी से कचरे व मिट्टी से भरा गया हैं। अतः इन जल स्त्रोतों को स्थानीय एवं प्रशासनिक सरकारो द्वारा संरक्षण व गंभीर रूप से ध्यान देने की आश्यकता है जिससे वर्षा के पानी का संचय किया जा सके।

राजस्थान में जल की भीषण स्थिति को देखते हुए भविष्य में जल विरासत को सहेज कर रखना अति आवश्यक हैं। जल संरक्षण की दिशा में रियासतकालीन शासकों ने भी आवश्यक व महत्त्वपूर्ण योगदान दिया हैं। इन शासकों ने पानी के बहाव क्षेत्रों को नियंत्रित कर उसका संरक्षण हो एवं राज्य की जनता को सदियों तक पानी उपलब्ध रहे, इसके लिए समय–समय पर विशाल व अनुपम बावड़ियों, तालाबों, कुण्डों का निर्माण कराकर वर्षो पूर्व उस समय में जल संरक्षण का संदेश दिया जो वर्तमान समय की महत्ती आवश्यकता हैं। अब समय आ गया है कि हम इन जलस्त्रोतों के महत्त्व को समझे व जन–जन को समझाएँ और पानी के साथ संस्कृति के इन रखवालों को भी बनाएँ। इसके लिए कुछ मजबूत व कठोर कदम उठाने की आवश्यकता हैं जिससे हम और हमारी आने वाली पीढ़ियों का जल संकट की विभीषिका से बचाया जा सके। वर्तमान में या आधुनिक युग मे यद्यपि नलकूपो के व्यापक प्रयोग के कारण इन प्राचीन बावड़ियों का महत्त्व घट रहा हैं परन्तु राज्य सरकार या प्रशासनिक विभाग इन परम्परागत जलस्त्रोत की बावड़ियो का जीर्णोद्वार किया जाये तो वर्तमान में इन्हें न केवल जल स्त्रोतों के रूप में विकसित किया जा सकता हैं। बल्कि साथ ही इस क्षेत्र में पर्यटन की संभावनाओं को भी विकसित किया जा सकता हैं।

सन्दर्भ :–

1. गुर्जर, रामकुमार, जाट, बी.सी., जल संसाधन भूगोल, पृ. 2 , रावत पब्लिकेशन जयपुर, 2005।
2. सक्सेना, हरिमोहन, राजस्थान का भूगोल, पृ. 87–88, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2021।
3. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के राजघरानों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 118, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 1991 ।
4. मनुस्मृति, अध्याय–1, पृ.4, श्लोक सं. 8 ।
5. अपराजित पृच्छा, अध्याय 74, पृ. 72–73 ।
6. व्यास, श्यामा प्रसाद, राजस्थान के अभिलेखों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 36, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर 1986 ।
7. दाक्षिणात्य प्रति, अनुवाद, (अ.96)।
8. वही।
9. वीर विनोद, भाग 2, खण्ड 1, पृ. 451, मोती लाल बनारसीदास।
10. मारवाड़ रा परगनां री विगत , भाग 1 (परिशिष्ट 'ख') सं. डॉ. नारायण सिंह भाटी एवं राजस्थान के इतिहास के स्त्रोत, डॉ. गोपीनाथ शर्मा।
11. मनोहर, राघवेन्द्र सिंह, राजस्थान के राजघरानों का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 118–119, पंचशील प्रकाशन जयपुर, 1991 ।
12. राजस्थान सुजस, पृ.23, मई–जून 2008, सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, जयपुर।
13. मिश्र, अनुपम, राजस्थान की रजत बून्दे, पृ.सं. 8, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, 2010।
14. गुर्जर, रामकुमार, जाट, बी.सी., जल संसाधन भूगोल, पृ. 281 , रावत पब्लिकेशन जयपुर, 2005।
15. राजस्थान सुजस, पृ.सं. 14 मई जून 2010।
16. गुर्जर, रामकुमार, जाट, बी.सी., उपरोक्त, पृ. 284।
17. शर्मा, कालूराम, व्यास, प्रकाश, राजस्थान का इतिहास पृ.सं. 443, पंचशील प्रकाशन जयपुर 1984।
18. कुसुम सोलंकी, भारतीय बावड़ियाँ पृ. 72 हिन्दी बुक सेन्टर नई दिल्ली, 2013।
19. उज्जैनिया, अनुकृति, हाड़ौती की जल संस्कृति, पृ. 56, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर, 2015।
20. अचरोल की बावड़ी का शिलालेख संवत् 1920 (1863ई.) ।
21. घाट की गुणी (जयपुर) की बावड़ी का लेख संवत् 1882 (1825ई.)।
22. शर्मा, हनुमान, नाथावतों का इतिहास, पृ. 37, राजस्थानी ग्रंथागार जोधपुर 2009।
23. शहर (करौली) के तालाब स्थित शिव मंदिर का शिलालेख संवत् 1824 (1767ई.)
24. लवाण (जयपुर) स्थित तालाब का शिलालेख।
25. जोबनेर (जयपुर) की रूपकुँवरी की बावड़ी का शिलालेख संवत् 1705 (1648 ई.)।
26. खण्डेला (सीकर) स्थित माजी की बावड़ी का शिलालेख संवत् 1749 (1692ई.)।
27. गोल्याणा (झुन्झुनू) की बावड़ी का शिलालेख संवत् 1774 (1717 ई.)।